

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 8: ध्रुव का वन-गमन

21 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक कठोर वचन से आहत, किन्तु अपनी माता के उपदेश से ऊपर उठकर, बालक ध्रुव राजमहल की ओर पीठ कर लेता है और अकेला वन की ओर चल पड़ता है, उस भगवान् को खोजने के दृढ़ संकल्प के साथ जो सबका आश्रय हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। दक्ष तथा सती की कथा अब पूर्ण हो चुकी है, और महर्षि मैत्रेय समस्त शास्त्रों की सबसे प्रिय कथाओं में से एक की ओर मुड़ते हैं — बाल-भक्त ध्रुव की कथा। यह वह कथा है जो एक छोटे बालक के आँसुओं से आरम्भ होती है और सर्वोच्च धाम तक उठ जाती है। अपनी अभिमानी विमाता द्वारा

तिरस्कृत होकर और यह सुनकर कि वह अपने पिता की गोद या सिंहासन पर कभी अधिकार नहीं पा सकता, नन्हा ध्रुव द्वेष में नहीं डूबता। अपनी स्नेहमयी माता सुनीति और फिर देवर्षि नारद के मार्गदर्शन में, वह अपनी पीड़ा को पवित्र संकल्प में बदल देता है, महल का सुख छोड़ देता है, और अकेला वन में चल पड़ता है — उस एकमात्र आश्रय को खोजने के लिए जिसे कोई उससे छीन नहीं सकता: स्वयं परम भगवान्। यह अष्टम अध्याय उसी वन-गमन का अध्याय है: वह घाव, वह उपदेश, नारद से भेंट, पवित्र द्वादशाक्षर मन्त्र, और एक ऐसी तपस्या का आरम्भ जो इतनी प्रचण्ड है कि लोकों को हिला देती है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 8 (अष्टम अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: ध्रुव का वन-गमन
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपने उपदेश की निरन्तरता में (जिसमें सुरुचि, सुनीति, नारद तथा भगवान् के वचन उद्धृत हैं)
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: राजा उत्तानपाद का राजमहल, तथा यमुना-तट पर स्थित मधुवन
- केन्द्रीय विषय: बालक ध्रुव का तिरस्कार, उसकी माता का उपदेश, नारद से उसकी भेंट, तथा भगवान् को खोजने के लिए उसका वन-गमन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 1-82
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 7 ने दक्ष तथा सती के लम्बे इतिहास को कृपा तथा पुनर्मिलन के साथ समाप्त किया — भगवान् शिव पुनः स्थापित हुए, यज्ञ पूर्ण हुआ, और सती अपने स्वामी से पुनः मिलने के लिए फिर जन्म लेतीं। अब मैत्रेय स्वायम्भुव मनु के वंशजों की ओर मुड़ते हैं। ब्रह्मा के पुत्रों में से महर्षि सनक तथा उनके भ्राता, नारद, और अन्य आजीवन ब्रह्मचारी रहकर भगवान् के प्रति समर्पित रहे। किन्तु अन्य लोगों ने गृहस्थ जीवन स्वीकार किया, और इसी वंश से स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र आए — उत्तानपाद तथा प्रियव्रत। ध्रुव की कथा राजा उत्तानपाद तथा उनके परिवार से ही आरम्भ होती है।

राजमहल में एक घाव

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं, सुनीति तथा सुरुचि। यद्यपि सुनीति ज्येष्ठ थीं तथा ज्येष्ठ पुत्र की माता, राजा का हृदय छोटी रानी सुरुचि तथा उसके पुत्र उत्तम पर मोहित था, जबकि सुनीति तथा उनके बालक ध्रुव उपेक्षित रहे। एक दिन राजा नन्हे उत्तम को अपनी गोद में बिठाकर लाड़ कर रहे थे। यह देखकर बालक ध्रुव भी आया, अपने पिता के पास चढ़ना चाहता हुआ — किन्तु राजा ने उसका स्वागत नहीं किया।

एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ।
उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाभ्यनन्दत ॥ ९ ॥

*ekadā suruceḥ putram aṅkam āropya lālayan uttamaṁ nārurukṣantaṁ dhruvaṁ
rājābhyanandata*

अर्थ: एक बार, जब राजा उत्तानपाद सुरुचि के पुत्र उत्तम को अपनी गोद में बिठाकर लाड़ कर रहे थे, तब नन्हा ध्रुव भी आया और चढ़ने का प्रयत्न करने लगा — किन्तु राजा ने उसका स्वागत नहीं किया। (स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 9)



ध्रुव को अपने पिता की गोद की ओर बढ़ते देख, अभिमानी रानी सुरुचि उसे तीखे वचनों से रोक देती है — कि जो बालक उसके गर्भ से जन्मा नहीं, उसका राजा की गोद या सिंहासन पर कोई अधिकार नहीं (श्लोक 9-13)।

बालक की उत्कण्ठा देखकर, अभिमानी सुरुचि ने ऐसे वचन कहे जो छुरी की भाँति चुभे। उसने ध्रुव से कहा कि वह न राजा की गोद में बैठ सकता है और न सिंहासन की आकांक्षा कर सकता है, क्योंकि वह उसके गर्भ से नहीं जन्मा; यद्यपि वह राजा का पुत्र है, वह ऐसे सौभाग्य के योग्य नहीं। यदि उसे सचमुच सिंहासन की अभिलाषा है, तो वह तपस्या से परम पुरुष की आराधना करे, और भगवान् की कृपा से उसके अपने गर्भ से अगला जन्म ले।

तपसाराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्राहेण मे ।
गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥ १३ ॥

*tapasārādhyā puruṣaṁ tasyaivānugraheṇa me garbhe tvam sādhayātmānaṁ yadīcchasi
nṛpāsanam*

अर्थ: यदि तुझे राजा के सिंहासन की अभिलाषा है, तो तपस्या से परम पुरुष की आराधना कर, और उनकी कृपा से मेरे गर्भ से अगला जन्म ले।
(स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 13)

विमाता के इन कठोर वचनों से बिंधकर, और अपने पिता को मौन देखकर, नन्हा बालक आहत सर्प की भाँति ज़ोर-ज़ोर से साँस लेता हुआ रोता हुआ अपनी माता के पास दौड़ा।

एक माता का उपदेश

जब सुनीति ने अपनी परिचारिकाओं से सुना कि उनके पुत्र के साथ क्या हुआ और उनकी सौत ने क्या वचन कहे, तो वे अभिभूत हो गईं। इसे सहन न कर पाकर, वे दावाग्नि में झुलसी कोमल लता की भाँति विलाप करने लगीं, और उनका कमल-सा मुख अश्रुओं से भीग गया।

सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोक-
दावाग्निना दावलतेव बाला ।
वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोज-
श्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥ १६ ॥

*sotsrjya dhairyaṁ vilalāpa śoka- dāvāgninā dāva-lateva bālā vākyaṁ sapatnyāḥ smaratī saroja-
śriyā dṛśā bāṣpa-kalām uvāha*

अर्थ: धैर्य खोकर, सुनीति दावाग्नि से झुलसी कोमल लता की भाँति विलाप करने लगीं; अपनी सौत के वचनों को स्मरण करते हुए, उनके कमल-सुन्दर नेत्र अश्रुओं से भर आए। (स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 16)



अपने रोते हुए पुत्र को हृदय से लगाकर, रानी सुनीति उसकी पीड़ा को पवित्र उपदेश में बदल देती हैं, उसे किसी का अनिष्ट न चाहने बल्कि परम भगवान् के चरण-कमलों की शरण लेने का आदेश देते हुए (श्लोक 16-24)।

फिर भी सुनीति ने अपमान का उत्तर अपमान से नहीं दिया। अपने शोक पर विजय पाकर, उन्होंने अपने पुत्र से आत्मा की सच्ची माता के रूप में बात की। उन्होंने स्वीकार किया कि सुरुचि के वचन, यद्यपि क्रूर थे, पूर्णतः असत्य नहीं थे, क्योंकि उनके कुल का सौभाग्य सचमुच राजा की प्रिय रानी पर टिका था। किन्तु फिर उन्होंने बालक की दृष्टि किसी भी सिंहासन से ऊँचे उठा दी। उन्होंने कहा — किसी के प्रति द्वेष मत रख; जो भी दुःख तुझे स्पर्श कर गया है, वह तेरे अपने पूर्व कर्मों का फल है। और उन्होंने उसे एकमात्र निश्चित आश्रय की ओर संकेत किया: वह परम भगवान् के चरण-कमलों की आराधना करे, उन्हीं भगवान् की जिनकी ब्रह्मा तथा महान् जन भी वन्दना करते हैं, जिन पर टिकने का संकेत अनजाने में स्वयं सुरुचि ने भी उसे दिया था। उनके अपने पूर्वज ब्रह्मा ने उन्हीं भगवान् की आराधना करके अपना उच्च आसन प्राप्त किया था; ध्रुव भी उन्हीं को खोजे, क्योंकि वे अनाथों के नाथ हैं और उन सबके एकमात्र आश्रय जो उनकी शरण लेते हैं।

संकल्प, तथा नारद से भेंट

जो उपदेश सान्त्वना के लिए था, उसने उलटे एक ज्वाला प्रज्वलित कर दी। ध्रुव ने अपनी माता के वचनों को हृदय में धारण किया, और इतनी छोटी अवस्था में विरल दृढ़ता के साथ उसने निश्चय किया: वह स्वयं परम भगवान् को खोजेगा। मन को स्थिर कर, वह अपने पिता की नगरी छोड़कर अकेला वन की ओर चल पड़ा।

देवर्षि नारद, स्वर्ग में विचरण करते हुए, बालक के संकल्प के विषय में जान गए, और उसकी दृढ़ता को जानकर विस्मित हुए कि इतनी छोटी काया में ऐसा निश्चय बसा है। ध्रुव के पास जाकर, उन्होंने अपने सर्व-पावन हाथ से बालक के शिर का स्पर्श किया और बोले।

नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ।

स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥ २५ ॥

nāradas tad upākaraṇya jñātvā tasya cikīrṣitam spṛṣṭvā mūrdhany agha-ghnena pāṇinā prāha vismitaḥ

अर्थ: यह सुनकर और बालक के संकल्प को जानकर, नारद विस्मय से भर उठे; अपने पाप-नाशक हाथ से ध्रुव के शिर का स्पर्श करते हुए वे बोले। (स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 25)



वन में देवर्षि नारद, नन्हे बालक के संकल्प पर विस्मित होकर, अपना पाप-नाशक हाथ ध्रुव के शिर पर रखते हैं और उसके मार्गदर्शक बन जाते हैं, उसे भगवान् को खोजने का उपाय सिखाते हुए (श्लोक 25-53)।

पहले नारद ने, एक स्नेही मार्गदर्शक की भाँति, बालक की दृढ़ता की परीक्षा ली। उन्होंने कोमलता से बताया कि तपस्या कितनी कठिन है, बालक कैसे खेल की ओर आकर्षित होते हैं, और संसार का मान-अपमान वस्तुतः अपने ही पूर्व कर्मों का फल है, जिसे बुद्धिमान् आत्मा समभाव से सहना सीख लेती है — अधिक योग्य को देखकर प्रसन्न होकर, कम भाग्यशाली पर करुणा करके, तथा समान को मित्र बनाकर; शायद अधिक परिपक्व अवस्था की प्रतीक्षा करना उत्तम हो। किन्तु ध्रुव विचलित होने वाला नहीं था। उसने स्पष्ट रूप से, एक क्षत्रिय-पुत्र की भाँति, उत्तर दिया कि नारद द्वारा दी गई सान्त्वनाएँ उसके जैसे बिंधे हृदय तक नहीं पहुँच सकतीं, और वह ऐसा पद चाहता है जो उसके पिता ने, यहाँ तक कि उसके प्रपितामह ब्रह्मा ने भी प्राप्त न किया हो — ऐसा पद जो केवल परम भगवान् ही दे सकते हैं।

नारद चाहते तो ऐसी असाधारण अभिलाषा को अस्वीकार कर सकते थे, या बालक से पहले वही समभाव सिद्ध करने को कह सकते थे जो वह अभी अनुभव नहीं कर पा रहा था। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। करुणा से द्रवित होकर, उन्होंने समझाया कि आत्मा जो भी सत्य में चाहती है — भली प्रकार निभाया गया धर्म, समृद्धि, इच्छाओं की तृप्ति, अथवा इस संसार से मुक्ति — उसका एक ही कारण है, दूसरा कोई नहीं: भगवान् के चरण-कमलों की प्रेमपूर्ण सेवा।

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।

एकं ह्येव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥ ४१ ॥

dharmārtha-kāma-mokṣākhyam ya icchec chreya ātmanah ekam hy eva hares tatra kāraṇam pāda-sevanam

अर्थ: आत्मा जो भी सत्य में चाहे — धर्म, समृद्धि, इच्छाओं की तृप्ति, अथवा मुक्ति — वह एक ही कारण से प्राप्त होता है: श्रीहरि के चरणों की समर्पित सेवा। (स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 41)

एक हृदय जो अब भी बालसुलभ घाव तथा बालसुलभ महत्वाकांक्षा से जल रहा था, इस शिक्षा के अनुसार, भगवान् के मार्ग में कोई बाधा नहीं था; उसे केवल अखण्ड भाव से उन्हीं की ओर मुड़ना था। इसलिए नारद ने बालक को पहले बड़ा और शान्त होने के लिए घर नहीं भेजा। ऐसी श्रद्धा से प्रसन्न होकर, उन्होंने उसी क्षण ध्रुव को अपने आध्यात्मिक शिष्य के रूप में स्वीकार किया, और उसे वही साधना दी जो उसकी पीड़ा को आराधना में बदल देगी।

तब ऋषि ने ध्रुव को वह अमूल्य उपदेश दिया जिसके लिए वह आया था। नारद ने कहा — यमुना-तट पर स्थित मधुवन के पवित्र उपवन में जा, जहाँ भगवान् सदा विद्यमान रहते हैं; वहाँ स्नान कर, इन्द्रियों को वश में कर, और अपने हृदय में परम भगवान् के मनोहर रूप का ध्यान कर — उनका शान्त कमल-मुख, शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किए उनकी चार भुजाएँ, मेघ के समान श्याम तथा उन सबके प्रति कृपालु जो उनका स्मरण करते हैं। और नारद ने उसे वह पवित्र द्वादशाक्षर मन्त्र दिया जिससे भगवान् की आराधना की जाती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुधः ।

सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥ ५४ ॥

*om̐ namo bhagavate vāsudevāya mantreṇānena devasya kuryād dravyamayīm budhaḥ
saparyām vividhair dravyair deśa-kāla-vibhāgavit*

अर्थ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” नारद ने कहा — इस मन्त्र से बुद्धिमान् भक्त भगवान् की आराधना करे, देश तथा काल के अनुसार विविध सामग्रियों से पूजा अर्पित करता हुआ। (स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 54)

यह वही मन्त्र है जो हमारी इस यात्रा के प्रत्येक अध्याय का आरम्भ करता है — भगवान् वासुदेव को, सबके अन्तर्यामी भगवान् को नमस्कार। नारद ने बालक को सिखाया कि भगवान् के रूप को मन में कैसे धारण करे, पूजा कैसे अर्पित करे, और इस मन्त्र को अपने अधरों पर तथा इस दर्शन को अपने हृदय में लेकर स्वयं को पूर्णतः परम भगवान् को कैसे समर्पित करे।

मधुवन की ओर प्रस्थान

इस प्रकार उपदेश पाकर, ध्रुव ने श्रद्धापूर्वक ऋषि की परिक्रमा की और उनके चरणों में प्रणाम किया, और फिर मधुवन के पवित्र वन की ओर चल पड़ा, जो श्रीहरि के चरण-चिह्नों से सदा अंकित रहता है।

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ।

ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ६२ ॥

*ity uktas taṁ parikramya praṇamya ca nṛpārbhakaḥ yayau madhuvanaṁ puṇyaṁ hareś caraṇa-
carcitam*

अर्थ: इस प्रकार उपदेश पाकर, राजकुमार ने नारद की परिक्रमा की और उन्हें प्रणाम किया, और श्रीहरि के चरण-चिह्नों से पवित्र मधुवन की ओर प्रस्थान किया। (स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 62)

इस बीच देवर्षि नारद राजमहल गए और शोकाकुल राजा उत्तानपाद को कोमलता से सान्त्वना दी, जो अपने नन्हे पुत्र को वन में भेज देने पर पश्चात्ताप करने लगे थे। नारद ने राजा को आश्वस्त किया कि बालक भगवान् द्वारा रक्षित है और यश से मण्डित होकर लौटेगा, और उन्हें शोक न करने को कहा।

वह तपस्या जिसने लोकों को हिला दिया

मधुवन पहुँचकर, ध्रुव ने यमुना में स्नान किया, और नारद के उपदेश का अनुसरण करते हुए उपवास, अटल एकाग्रता, तथा पवित्र मन्त्र के जप के साथ अपनी आराधना आरम्भ की।

तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ।

समाहितः पर्यचरदृष्ट्यादेशेन पूरुषम् ॥ ७१ ॥

tatrābhiṣiktaḥ prayatas tām upoṣya vibhāvarīm samāhitaḥ paryacarad ṛṣy-ādeśena pūruṣam

अर्थ: वहाँ स्नान करके तथा एक रात्रि का उपवास करके, शुद्ध-हृदय ध्रुव ने एकाग्र मन से, जैसा ऋषि ने आदेश दिया था, परम पुरुष की आराधना की। (स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 71)

मास-दर-मास बालक ने अपनी तपस्या को गहन किया, यहाँ तक कि उसकी एकाग्रता इतनी प्रचण्ड हो गई कि ब्रह्माण्ड की श्वास ही मानो रुकने लगी। श्वास न ले पाने से देवगण भयभीत होकर परम भगवान् की शरण में दौड़े। भगवान् ने कोमल वचनों से उन्हें आश्वस्त किया, यह प्रकट करते हुए कि यह विक्षोभ किसी शत्रु से नहीं, बल्कि एक नन्हे बालक से — उत्तानपाद के पुत्र से — उपजा है, जो उन्हीं में पूर्णतः लीन है।

श्रीभगवानुवाच

मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्यया-

निर्वर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ।

यतो हि वः प्राणनिरोध आसी-

दौत्तानपादिर्मयि सङ्गतात्मा ॥ ८२ ॥

śrī-bhagavān uvāca mā bhaiṣṭa bālāṁ tapaso duratyayān nivartayiṣye pratiyāta sva-dhāma yato hi vaḥ prāṇa-nirodha āsīd auttānapādir mayi saṅgatātmā

अर्थ: भगवान् ने कहा: भय मत करो। तुम्हारी श्वास का अवरोध उस बालक से है, उत्तानपाद के पुत्र से, जिसका हृदय प्रचण्ड तपस्या से पूर्णतः मुझमें लीन है। मैं उसे इन उग्र तपस्याओं से लौटा लूँगा; तुम शान्ति से अपने-अपने धामों को लौट जाओ। (स्कन्ध 4, अध्याय 8, श्लोक 82)



मधुवन की गहराई में, बालक ध्रुव भगवान् के अटल ध्यान में खड़ा है; इतनी प्रचण्ड है उसकी लीनता कि लोक स्वयं विचलित हो उठते हैं, और परम भगवान् व्याकुल देवताओं को आश्रित करते हैं कि वे अपने नन्हे भक्त के पास जाएँगे (श्लोक 71-82)।

उसी कृपापूर्ण वचन के साथ अष्टम अध्याय समाप्त होता है — भगवान् के स्वयं अपने बाल-भक्त के पास आने की देहरी पर टिका हुआ, जिसे अगला अध्याय प्रकट करेगा।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. एक घाव द्वार बन सकता है। स्पष्ट रूप से यह कहे जाने पर कि सिंहासन तथा पिता की गोद किसी अन्य स्त्री के पुत्र की है, उसकी नहीं, और साथ ही अपने पिता के मौन का सामना करने पर, सुरुचि के वचनों से ध्रुव की पीड़ा घृणा में कठोर नहीं हुई; अपनी माता के मार्गदर्शन में, वही वह शक्ति बन गई जिसने उसे ऐसे आश्रय को खोजने के लिए प्रेरित किया जिसे कोई फिर कभी उससे नहीं छीन सकता। जो हमें तोड़ता है वही वह द्वार बन सकता है जिससे कृपा प्रवेश करती है (श्लोक 9-24)।
2. सच्चा उपदेश संसार से परे संकेत करता है। सुनीति अपने पुत्र की शिकायत को पोषित कर सकती थीं; इसके स्थान पर, स्वयं अश्रु बहाते हुए भी, उन्होंने उसकी दृष्टि सिंहासन से ऊपर भगवान् के चरणों की ओर उठाई। उन्होंने उसे सिखाया कि कोई भी दुःख उसके अपने पूर्व कर्मों के फल के अतिरिक्त कहीं और से नहीं आता, कि किसी का अनिष्ट न चाहना ही बुद्धिमत्ता का चिह्न है, और वही आराधना जिसने महान् ब्रह्मा को उनका उच्च आसन दिया, हर सच्चे हृदय के लिए खुली है, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो (श्लोक 16-24)।
3. सच्चा संकल्प मार्गदर्शक को खींच लाता है। जिस क्षण ध्रुव शुद्ध हृदय से चल पड़ा, नारद उसके पास आ गए। जब साधक तैयार होता है, तब गुरु प्रकट होते हैं, और सच्चाई से झुके शिर पर पावन हाथ रखते हैं (श्लोक 25)।
4. भक्ति के लिए किसी पूर्व-योग्यता की आवश्यकता नहीं। ध्रुव उस समभाव का दिखावा नहीं कर सका जो स्वयं ऋषि में था — उसने खुलकर स्वीकार किया कि उसका हृदय, एक कठोर वचन से बिंधा हुआ, शान्त नहीं हो सकता, और वह ब्रह्मा से भी ऊँचा पद चाहता है। नारद ने उसे न तो इतना चाहने के लिए, न ही भीतर जल रहे होने को स्वीकारने के लिए तिरस्कृत किया। इसके बजाय उन्होंने सिखाया कि जो भी कुछ चाहे —

धर्म, धन, भोग अथवा मुक्ति — वह भगवान् के चरण-कमलों की सेवा के अतिरिक्त किसी और उपाय से नहीं मिलता; भक्ति निष्काम अथवा पहले से शुद्ध हृदयों के लिए आरक्षित नहीं, बल्कि प्रत्येक सच्चे हृदय के लिए खुला एकमात्र द्वार है, चाहे उसमें घाव हो या महत्वाकांक्षा (श्लोक 35-41)।

5. नाम ही निधि है। ध्रुव के सम्पूर्ण मार्ग का सार उसी द्वादशाक्षर मन्त्र में समाया है जो नारद ने उसे दिया — ॐ नमो भगवते वासुदेवाय — वही नमस्कार जो भागवत के प्रत्येक पाठ का आरम्भ करता है। पवित्र नाम बालक की, और प्रत्येक भक्त की, सबसे निश्चित सम्पदा है (श्लोक 54)।

6. पूर्ण हृदय की भक्ति स्वर्ग को हिला देती है। मास-दर-मास ध्रुव की तपस्या गहन होती गई — पहले हर तीसरे दिन फल, फिर सूखे पत्ते, फिर केवल जल, फिर केवल श्वास, यहाँ तक कि वह एक पैर पर स्थिर खड़ा हो गया — उसकी एकनिष्ठ लीनता इतनी पूर्ण हो गई कि लोक काँप उठे और देवगण स्वयं भय से अपनी श्वास खो बैठे, यहाँ तक कि स्वयं भगवान् को उन्हें आश्चर्य करना पड़ा। आयु तथा बल कुछ नहीं; भगवान् के प्रति एकनिष्ठ प्रेम ही सब कुछ है (श्लोक 71-82)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

एक कारण है कि ध्रुव की कथा इतनी पीढ़ियों द्वारा प्रिय रही है। यह उस बात से आरम्भ होती है जिसे प्रत्येक हृदय जानता है — उपेक्षित किए जाने की चुभन, न चुने जाने की टीस — और यह हमें दिखाती है कि उस टीस के साथ क्या करें। ध्रुव अपने घाव को सहलाता नहीं रहता, न ही उसकी माता उसे यह सिखाती है। वह उसकी दृष्टि उस गोद से, जो उसे नकारी गई, उन चरणों की ओर मोड़ देती है जो किसी को कभी नहीं लौटाते। और नन्हा बालक, तर्क करने के लिए बहुत छोटा किन्तु प्रेम करने के लिए पर्याप्त बड़ा, बस अपने समस्त अस्तित्व के साथ भगवान् की ओर चल पड़ता है। हम प्रायः कल्पना करते हैं कि भक्ति के लिए बल, परिपक्वता, विद्या, उचित परिस्थितियाँ चाहिए। ध्रुव के पास इनमें से कुछ न था — केवल एक आहत हृदय तथा एक अटल संकल्प — और स्वर्ग स्वयं उसकी ओर झुक गया। उसकी कथा हमें बताती है कि भगवान् हमारी आयु या सुविधाओं को नहीं, बल्कि उनकी ओर हमारे मुड़ने की पूर्णता को नापते हैं। वही पीड़ा जिसके विषय में हम चाहते हैं कि वह कभी न आती, भगवान् के हाथों में, हमारी खोज का आरम्भ हो सकती है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, वह निधि ग्रहण करें जो नारद ने ध्रुव के हाथों में रखी। कुछ मिनट शान्त बैठें, अपनी श्वास स्थिर करें, और इस अध्याय में दिए द्वादशाक्षर मन्त्र का कोमलता से जप करें — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”। जप करते हुए, बालक ध्रुव का चित्र अपने मन में उठने दें: महल से मुड़ता हुआ, वन में चलता हुआ, अपना समस्त नन्हा हृदय भगवान् को देता हुआ। यदि कोई अपमान या शोक आप पर भारी है, तो उसे इस जप में वैसे ही अर्पित करें जैसे ध्रुव ने अपना अर्पित किया — शिकायत की भाँति पकड़ा हुआ नहीं, बल्कि भगवान् तक पहुँचने के द्वार की भाँति समर्पित। उस सरल मोड़ में, आप बाल-भक्त के साथ उसके भगवान् की ओर के मार्ग पर कुछ पग चलते हैं।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का अष्टम अध्याय श्रीमद्भागवतम् की सबसे प्रिय कथाओं में से एक का उद्घाटन करता है — बालक ध्रुव की कथा। सुरुचि के अभिमानपूर्ण अस्वीकार तथा अपने ही पिता के मौन से आहत होकर, नन्हा बालक रोता हुआ अपनी माता सुनीति के पास दौड़ता है, जो उसकी पीड़ा को पवित्र उपदेश में बदल देती हैं और उसे परम भगवान् के चरण-कमलों की ओर संकेत करती हैं। अपनी आयु से बढ़कर संकल्प के साथ,

ध्रुव महल छोड़कर वन की ओर जाता है, जहाँ देवर्षि नारद, उसकी दृढ़ता पर विस्मित होकर, उसके मार्गदर्शक बनते हैं, उसे भगवान् के मनोहर रूप का ध्यान करना सिखाते हैं, और उसे पवित्र द्वादशाक्षर मन्त्र, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, देते हैं। पवित्र मधुवन में बालक स्वयं को इतनी प्रचण्ड तपस्या को सौंप देता है कि लोक हिल उठते हैं और स्वयं भगवान् ध्यान देते हैं, व्याकुल देवताओं को आश्वस्त करते हुए कि वे अपने नन्हे भक्त के पास आएँगे। इस प्रकार अध्याय कृपा की देहरी पर समाप्त होता है, जैसे वह वन-गमन जो एक घाव से आरम्भ हुआ, अपने प्रतिफल के निकट पहुँचता है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, अष्टम अध्याय।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-8-dhruvas-departure-for-the-forest-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट